भगिनी निवेदिता की दृष्टि में आधुनिक भारत के निर्माता के रूप में स्वामीजी की भूमिका

manju kumara
research scholar

भगिनी निवेदिता की कृति 'The Master As l Saw Him' में उनका बहुआयामी विराट व्यक्तित्वपूरी भव्यता और सम्पूर्णता से उभरा है, जो स्वामीजी विषयक किसी भी अध्ययन के लिए 'एक प्रामाणिक दस्तावेज'[1] है। अपनीदिगन्त प्रतिश्रुत ख्याति के प्रभामंडल व ईश्वरीय नगर के तीर्थयात्री के रूप में विस्मित कर देने वाली उपलब्धियों से परे स्वामी विवेकानन्द ने एक व्यक्ति के रूप में अपना हृदय केवल दो व्यक्तियों के सम्मुख खोला। इस विशेषाधिकार से सम्पन्न ये दो व्यक्ति थे, उनके सखा स्वरूप शिष्य खेतड़ी नरेश अजीतसिंह[2] और दूसरी आध्यात्मिक दुहिता भगिनी निवेदिता।

यही कारण है कि स्वामीजी के महाप्रस्थान के पश्चात् रामकृष्ण मिशन के प्रथम अध्यक्ष स्वामी ब्रह्मानन्द ने भगिनी से आग्रह किया था कि वे स्वामीजी की जीवनी लिखें क्योंकि उनके और गुरुदेव के बीच जो उदात्त भाव सम्बन्ध थे, उनके फलस्वरूप स्वामीजी के अन्तर में झांकने, उनके मिशन को समझने व उनके व्यक्तित्व को निकट से देखने–परखने को जो दुर्लभ अवसर उन्हें मिला था उसे देखते हुए स्वामीजी के जीवन, संदेश व ध्येय का तलस्पर्शी व प्रामाणिक विश्लेषण व व्याख्या करने की सामर्थ्य केवल भगिनी को प्राप्त थी। प्रारंभ में तो भगिनी को भी हिचकिचाहट थी कि क्या वे इस दुःसाध्य कार्य को पूरा कर पांएगी? क्या वे लोगों की अपेक्षाओं पर खरा उत्तर पाएंगी? यह उनके लिए चुनौती भरा कार्य था और इसे पूरा करने में उन्हें चार वर्ष लगे[3] किन्तु भगिनी ने जिस तरह भावप्रवण शैली में गुरुदेव विषयक अपने संस्मरण लिखे हैं, वह अनुपमेय हैं। यही कारण है कि स्वामीजी के संदर्भ में इस ग्रंथ पर वही बात खरी उतरती है जो रविन्द्र नाथ ठाकुर ने फ्रांसीसी चिंतक रोमां रोलां के पत्र के उत्तर में लिखी थी कि यदि आप भारत को समझना चाहते हैं तो विवेकानन्द का अध्ययन कीजिये। यही जिज्ञासा यदि किसी को स्वामी विवेकानन्द के बारे में हो तो निश्चित रूप से उत्तर होगा– भगिनी निवेदिता।

स्वामी को 'भारत द्वारा मानवता को दिया गया सर्वोच्य उपहार' मानने वाली भगिनी ने इस ग्रंथ और अपनी पत्रावली (दो खण्ड) में आधुनिक भारत के निर्माता के रूप में स्वामीजी की भूमिका पर समग्र दृष्टि से प्रकाश डाला है। चूंकि स्वामीजी की मानवपुत्री के रूप में उन्हें अपने गुरूदेव का निकट साहचर्य प्राप्त हुआ, उनके भावजगत की गहराईयों की थाह पाने का अवसर मिला, फलतः यह ग्रंथ आम जीवनियों से परे विवेकानन्द के बहुआयामी व्यक्तित्व के उन सभी पहलुओं को उजागर करता है जो अन्य सभी लोगों की पहुँच से परे थे।

स्वामीजी के व्यक्तित्व, संदेश, स्वदेश प्रीति, राष्ट्र निर्माता के रूप में उनकी भूमिका और सर्वोपरि गुरू–शिष्या किंवा पिता–पुत्री के भाव सम्बन्धों के माधुर्य व कोमलता का दिग्दर्शन जिस प्रकार भगिनी ने कराया है, वह इस राष्ट्रभक्त संत के जीवन और कार्यो का उनकी समग्रता में मूल्यांकन करने की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, इस संदर्भ में भगिनी के पत्रों का भी अन्यतम स्थान है। गुरू–शिष्या से बढ़कर एक पिता दुहिता के रूप में उनके भाव सम्बन्धों की पुण्यसलिता इस विश्लेषण को विशिष्टता प्रदान करती है। स्वयं भगिनी ने स्वीकार किया है कि "मेरे लिये मेरे गुरुदेव का भावशून्य, तिस्तेज व आलोचनात्मक विवरण प्रस्तुत करना असंभव है जिसकी अपेक्षा आप किसी इतिहासकार या पत्रकार से करते है।"[4] उन्होंने तो गुरुदेव विषयक अपने 'निष्ठापूर्ण व श्रद्धापूर्ण अनुभव' प्रस्तुत किए हैं। यही कारण है कि भगिनी ने स्वामीजी के जीवन व कार्यो के जिन पहलुओं पर प्रकाश डाला है, वे सूचनाएँ और विवरण मात्र नही है, अपितु उनमें गहन अनुभूति का स्पन्दन है, एक जटिल सूत्र का भाष्य है, एक पुत्री द्वारा प्रस्तुत अपने पिता के अन्तर्जगत की मनोहारी छवि है जिसका शब्दशिल्प

एवं भाव वैभव अनुपम है। भगिनी के सम्पूर्ण लेखन में जहाँ कहीं भी स्वामीजी का जिक्र आया है, वह भावप्रवणता से मुखरित है। प्रसंग चाहे लौकिक हो गया आध्यात्मिक, गुरुदेव का उल्लेख होते ही उनकी चेतना पूर्णतः स्पंदित हो जाती थी, हृदयसागर में ऊर्मियाँ उठने लगती थी। गुरुदेव के विषय में अपनी भावनाओं को शब्दों में ढालना स्वयं भगिनी को कठिन प्रतीत होता था। श्रीमती नेल हेमण्ड को लिखे गये पत्र[5] में अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए वे लिखती हैं – "It is too great for words, my pen would have to learn to whisper" इस अद्वितीय शब्द व भाव सौन्दर्य को दूसरी भाषा में प्रस्तुत करना असंभव है।

निवेदिता जैसी पवत्रिता की परम अधिष्ठान, दिव्यभावभूषिता, आत्मबलिदान की पर्यायवाची शिष्या ही अपने गुरूदेव के व्यक्तित्व की महानता, विराटता और व्यापकता को उजागर कर सकती थी और यह कमा उन्होंने बखूबी किया है। स्वामीजी विषयक भगिनी के अभिमत को जानने के लिए पहले गुरू–शिष्या के भाव सम्बन्धों को समझना आवश्यक है।

अपने अल्प किन्तु यशस्वी जीवन काल में कई गंभीर प्रश्न स्वामीजी के मानस को तीव्रता से मथते रहे। उनका समाधान ही उनके जीवन का ध्येय बन गया। सन्यासी जीवन को लगभग उत्क्रान्त करने वाले विवेकानन्द की दृष्टि में सत्य की खोज अपनी मातृ–भूमि और देशवासियों की सेवा से अविच्छिन्न रूप से सम्बद्ध थी। परमहंस का उन्हें स्पष्ट आदेश था कि अपने आत्मभाव में लौटाने से पूर्व उन्हें 'माँ' का कार्य करना होगा। यह 'माँ' कौन थी, इसका उत्तर उन्हें कन्याकुमारी के शिलाखण्ड पर ध्यानवस्था में प्राप्त हुआ। मातृ–भूमि ही वह माँ थी और उसे दीन–हीन अवस्था से उबारना उनका जीवन ध्येय बन गया।

राष्ट्रजीवन को ऊर्जावान बनाने के कई आयाम थे। उन पर समग्रता से विचार करके स्वामीजी ने अपनी कार्य योजना तैयार की थी। इस कारण अपना मिशन निर्धारित करते समय उन्होंने सन्यास संस्था के आदर्श को ही बदल दिया। आत्ममुक्ति, मोक्ष या निर्वाण नहीं, राष्ट्र मुक्ति इसका लक्ष्य था। कर्म क्षेत्र में उतरते समय उनके समक्ष बड़ी चुनौति थी। यूरोप की भौतिक उपलब्धियों से स्तब्ध भारतीयों को अपनी संस्कृति व परम्परा की महत्ता और आर्जव से परिचित करवाना अपरिहार्य था ताकि उनमें आत्म गौरव जागृत हो सके। तभी वे अपनी आध्यात्मिक परम्पराओं, इतिहास व संस्कृति के योग्य उत्तराधिकारी बन सकते थे। धर्म महासभा में शिरकत और तत्पश्चात् लगातार चार वर्षो तक पश्चिमी दुनिया की व्याख्यान यात्रा इस मिशन की पूर्ति के अंग थे। स्वामीजी के ध्येय व अवदान का भगिनी ने उपर्युक्त मुद्दों के संदर्भ में विवेचन करते हुए अपना अभिमत प्रस्तुत किया है। ऊपर से लौकिक प्रतीत होने वाले इस मिशन की आध्यात्मिक इयत्ताओं का इसमें बारीकी से विश्लेषण हुआ है। 'जिस महान् जीवन की शीतल, सुखद छवि में खड़े होने का भगिनी को अवसर मिला था' वह उनके अनुसार दो महत् उद्देश्यों की ओर अभिमुख था।[6] एक तो विश्व आन्दोलन और दूसरे राष्ट्र निर्माण। जहाँ तक विदेशों का सम्बन्ध है, पश्चिमी राष्ट्रों के लिए विवेकानन्द वेदों और उपनिषेदों में निहित विचारों के प्रथम आधिकारिक व्याख्याकार थे। वे कहा करते थे कि मैने वेदों और उपनिषदों के अतिरिक्त अन्य किसी ग्रंथ को उद्धृत नहीं किया है। उन्होंने 'स्वर्ग नहीं अपितु मुक्ति' मुक्ति नहीं वरन् प्रबद्धीकरण और किसी एक पंथ विशेष की आबद्धकारी शक्ति नहीं अपितु सभी धर्मो के सत्य का उपदेश दिया।'[7]

भगिनी के अनुसार उन्हें ऐसा प्रतीत होता था कि शैशव से ही विवेकानन्द में एक गुप्त मूल प्रवृत्ति थी जो उन्हें यह बोध कराती थी कि उनका जन्म अपने देश की सहायता करने के लिए हुआ है। बाद के दिनों में वे गर्व से यह याद करते थे कि अमरीका में अपने प्रारंभिक दिनों के उतार–चढ़ावों के दौरान जब यह भी ज्ञात नहीं होता था कि अगला भोजन कब और कहाँ मिलेगा तब भी उनका अन्तःस्थ विश्वास कभी नहीं हिला। इस प्रकार की 'अदम्य आशा निश्चित रूप से उन सभी आत्माओं के भीतर निवास करती है जो किसी विशेष मिशन को पूरा करने हेतु अवतरित होती है।[8]

स्वामीजी प्रायः कहा करते थे कि मनुष्य निर्माण ही मेरा ध्येय है। इस संदर्भ में भगिनी का कहना है कि मनुष्य निर्माण उनकी दृष्टि में करने योग्य काम का सारतत्व था और इस कार्य में वे परिश्रमर्पूक अथक रूप से दिन–रात जुटे रहे। इस क्रम में उन्होंने गुरु, पिता और स्कूल शिक्षक की भूमिका

बारी–बारी से निभायी।[9] उन्होनें ईश्वर अथवा गुरू विषयक किसी एक धर्म या पंथ को अजनबी लोगों में लोकप्रिय बनाने का प्रयास नहीं किया अपितु उनके माध्यम से हिन्दू धर्म की सशक्त धारा ने बौद्धिक व आध्यात्मिक जगत को उस शीतल जल से स्नात कर दिया जिसके गुह्य स्रोत हिमालयी बर्फ में विद्यमान थे। लोगों ने पहली बार ऐसे धर्मगुरू की वाणी सुनी जो सत्य से भयभीत नहीं था।[10]

भारत में जन्मे धर्मो में केवल बौद्ध धर्म ऐसा धर्म था जो मिशनरी भावना से युक्त था। अनेक बाधाओं से जूझते हुए धर्मोत्साही भिक्षुओं ने सुदूर प्रदेशों की धर्म विजय यात्राएँ की। उनके त्याग व समर्पण से ही एशिया खण्ड के अनेक देश 'बुद्धं शरणम् गच्छामि' की ध्वनि से गुंजायमान हुए। दक्षिणी पूर्वी एशिया में भारतीय संस्कृति के विस्तार का बहुत कुछ श्रेय इन भिक्षुओं को है। स्वामीजी के पश्चिमी मिशन की बौद्ध भिक्षुओं से तुलना करते हुए भगिनी लिखती हैं, बौद्ध भिक्षुओं के धर्म विजय अभियानों की समाप्ति से लेकर सन् 1893 में आयोजित शिकागो विश्व धर्म महासभा को गेरूआ वसन मण्डित स्वामी विवेकानन्द द्वारा हिन्दू धर्म के प्रतिनिधि के रूप में सम्बोधित किये जाने तक हिन्दू धर्म ने कभी भी एक सन्देशवाहक धर्म के रूप में भूमिका नहीं निभायी। बौद्ध भिक्षुओं की भाँति उनके मामले में भी उन्हें विदेशों की ओर प्रस्थान करने हेतु प्रेरित करने वाली शक्ति वह महान् व्यक्तित्व था, जिनके चरणों में कई वर्षो तक बैठकर उनके संदेश को उन्होंने आत्मसात किया था।[11] उनका विश्वास था कि अब समय आ गया कि राष्ट्र अपने आदर्शो का आदान–प्रदान करे जिस तरह वे विक्रय योग्य वस्तुओं का विनिमय करते रहे हैं।[12]

भगिनी का अभिमत है कि स्वामीजी हमारे बीच सर्वव्यापी ईश्वर में हिन्दू आस्था के सन्देश वाहक के रूप में आए। वे यह अनुभव करते थे कि आवश्यकता थी एक ऐसे धर्म की जो अपने अनुयायियों को सत्य के सम्मुख निर्भीक बना सके।[13] यही कारण था कि धर्म के नाम पर चलने वाले तमाम अभिचारों, गुह्यविद्या आदि को उन्होंने विष के समान त्जाज्य बताया। विवेकानन्द सर्वदा यह चाहते थे कि विदेशियों की आलोचनाओं व प्रहारों से हिन्दू जाति का संगठन टूट नहीं पाये। "वे दुःखवाद के आलिंगन के बदले आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता और 'स्वयमेव मृगेन्द्रता' के शक्तियोग के समर्थक थे।"[14] भौतिकवाद में रमण करने के बजाय आध्यात्मिक वेदान्त की शिक्षाओं को व्यावहारिक रूप देने का उनका जोरदार प्रस्ताव था।

स्वामीजी भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रीयता के जनक थे। उन्होंने जिस काम का बीड़ा उठाया उसने आधुनिक भारत को संजीवन प्रदान किया। शिकागो धर्ममहासभा में उनकी उपलब्धि देश के सांस्कृतिक इतिहास में एक निर्णायक मोड़ सिद्ध हुई। शक्तियोग के उपासक विवेकानन्द ने भारत को जो दिशा व दृष्टि प्रदान की उसी के फलस्वरूप 'लोगों ने अपने भविष्य के प्रति उज्जवल आशा संचरित हुई।'[15] राममोहन रॉय, केशव सेन व परमहंस द्वारा तैयार भावभूमि में अश्वतथ होकर उठे विवेकानन्द के अवदान का मूल्यांकन भगिनी ने उनके विराट मिशन को ध्यान में रखते हुए किया हक। उनका मानना है कि स्वामीजी के रूप में एक ऐसा विराट पुरूष हमारे समक्ष था जिसे अनेक देशों के लोगों को निकट से देखने का अद्वितीय अवसर मिला था। उन्होंने पूर्व और पश्चिमी को भली–भाँति देखा–समझा था। यह कहा जा सकता है कि 'जिस प्रकार असीसी के फ्रांसीस के जीवन में भारतीय सन्यासी का गेरूआ वस्त्र केथोलिक चर्च के इतिहास में एक क्षण के लिए चमकता है उसी प्रकार विवेकानन्द के रूप में पश्चिमी मठ परम्परा के महान् संत व धर्माचार्य पूर्व में अभिनव जन्म ग्रहण करते हैं।[16]

भगिनी के अनुसार उनका युग राष्ट्रीय बिखराव का युग था। जब लोग अपने सांस्कृतिक उत्तराधिकार का परित्याग कर रहे थे। उस समय स्वामीजी के माध्यम से राष्ट्रीय नियति ने परिपूर्णता प्राप्त की। वे एक साथ ही अति चेतनाशील धर्म की उदात्त अभिव्यक्ति एंव महानतम देशभक्त थे। उन्हें 'राष्ट्रीय आन्दोलन के आधुनिक संत पॉल'[17] मानने वाली भगिनी का कहना है कि 'उनके निजी संघर्ष, निजी इच्छाएँ अपने देश के कल्याण की उनके अशमनीय अनुराग के साथ जुड़ गये थे। उन्होंने कभी राष्ट्रीयता की घोषणा नहीं की किन्तु वे स्वयं इस शब्द से ध्वनित होने वाले विचार की जीवंत प्रतिमा थे।'[18] यही नहीं चेतना के सहज विस्तार से वे ज्यों–ज्यों अन्य राष्ट्रों की शक्ति व मनोहारी गुणों से

परिचित हुए त्यों–त्यों अपनी भारतीयता के प्रति वे अधिकाधिक गौरव से अभिभूत होते हुए। वे उन तथ्यों के प्रति अधिकाधिक सजग होते गए जिनमें उनकी मातृ–भूमि शिखरस्थ थी।[19]

उनकी दृष्टि से देश तरूण था और राष्ट्रीय ऊज्र अभी तक अप्रयुक्त पड़ी थी। उनके विचार में देश की आशा विदेशियों में नहीं, स्वयं में निहित थी। उन्हें बाहरी लोगों से न तो आशा थी और न भय। जो भारत का स्व था उसकी पुनर्प्रतिष्ठा और राष्ट्रीय जीवन की धारा को अभिनव आत्मविश्वास व शक्ति से सुदृढ़ बनाना ही उनके सन्यास का अभिप्राय था।[20] उन्हें यह कभी नहीं लगा कि उनके देशवासी किसी भी अर्थ में अन्य किसी देश के समान नही है। उनका सम्पूर्ण हृदय व आत्मा देश का त्वलंत महाकाव्य था।[21] भगिनी का मत है कि स्वामीजी के हाथों में उन तमाम बातों के सूत्र थे जो आधारभूत, आंगिक व महत्वपूर्ण थी। वे जीवन के गुप्त स्रोतों से परिचित थे। वे जानते थे कि कौनसे शब्द से लाखों लोगों के हृदयों को झकृत किया जाए और उस सारे ज्ञान से उनमें एक स्पष्ट व निश्चित आशा जागृत हुई।[22]

भगिनी ने न केवल राष्ट्रीय जागृति वरन् धार्मिक व आध्यात्मिक क्षेत्र में स्वामीजी के अवदान पर प्रकाश डाला है। इस दृष्टि से स्वामीजी की ग्रंथावलि की भूमिका स्वरूप 'हमारे गुरूदेव और उनका सन्देश' शीर्षक से लिखा गया लेख उल्लेखनीय है। शिकागो धर्म महासभा व उसके अनुवर्ती समय में उनके कार्यो की महत्ता को रेखाकिंत करते हुए वे लिखती है कि आधुनिक युग के विघटनशील वातावरण में हिन्दूधर्म को आवश्यकता थी एक ऐसी चट्टान की, जहाँ वह लंगर डाल सके, एक ऐसी प्रामाणिक वाणी की, जिसमे वह स्वयं को पहिचान सके। स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में हिन्दू धर्म को यह वरदान उपलब्ध हो गया।[23] हिन्दू धर्म को आवश्यकता थी अपने ही भावदर्शो को सुव्यवस्थित और सुगठित करने की ओर संसार को जरूरत थी सत्य से भयभीत न होने वाले धर्म की। ये दोनों स्वामीजी के सन्देश में उपलब्ध है।[24]

विश्व धर्म महासभा में स्वामीजी का प्रथम अभिभाषण उनकी वाग्मिता और वैदुष्य का विलक्षण नमूना था जिसने श्रोताओं को अभिभूत कर दिया था। मात्र चार सौ सत्तर शब्दों के इस अभिभाष्ण के लालित्य व भावप्रवणता से सभी मुग्ध हो गए। जब अन्य प्रतिनिधि अपने–अपने धर्म का बखान कर रहे थे, मानवता के धर्म का आख्यान करने वाले विवेकानन्द एक मात्र वक्ता थे। भगिनी के अनुसार "जब उन्होनें अपना भाषण प्रारंभ किया था तो विषय था, 'हिन्दुओं के धार्मिक विचार' किन्तु जब उन्होंने अन्त किया तब तक हिन्दू धर्म की सृष्टि हो चुकी थी। भारत की धार्मिक चेतना–सम्पूर्ण अतीत द्वारा अतीत निर्धारित उनके समग्र देशवासियो का सन्देश ही उनके माध्यम से मुखर हुअसा। यह संक्षिप्त अभिभाष्ण स्वयं भारत के लिए मताधिकार की एक छोटी सी सनद थी।"[25] हिन्दू धर्म विषयक भ्रान्त मान्यताओं का खण्डन करते हुए स्वामीजी ने अत्यन्त प्रभावी रूप से वेदान्त दर्शन के जीवनदायी स्वरूप को विश्व के सामने रखा। उनके कारण ही हिन्दुत्व सम्बन्धी ईसार्द पादरियों के अनर्गल प्रचार पर विराम लग गया और आध्यात्मिक क्षेत्र में भारत की श्रेष्ठता निर्विवाद रूप से प्रमाणित और प्रतिष्ठित हो गयी। इस सम्बन्ध में भगिनी का कहना है, यदि वे न होते तो आज सहस्त्रों लोगों को जीवनदायी सन्देश प्रदान करने वाले ग्रंथ पंडितों के विवाद के विषय ही बने रहते। उन्होंने एक पंडित की भाँति नहीं, एक अधिकारी व्यक्ति की भाँति उपदेश दिया क्योंकि जिस सत्यानुभूति का उपदेश उन्होंने किया, उसकर गहराईयों में वे स्वयं गोता लगा चुके थे।[26]

निस्सन्देह स्वामीजी का व्यक्तित्व बहुत विराट था और भारतीय नवोन्मेष के वे महानायक थे। प्रबल चुनौतियों के सम्मुख वे शार्दूल विक्रम से डटे रहे। पौरूष की पराकाष्टा का प्रतीक उनका जीवन और आधुनिक भारत किंवा मानवता को उनका अवदान वेदान्त की सर्व कल्याण की भावना से प्रभामंडित है। भगिनी को अपने गुरुदेव के ध्येय, मानस व सरोकारों की गहरी समझ थी। स्वामीजी के व्यक्तित्व का कोई पहलू, ऐसा नहीं है जो उनकी गहन विश्लेषणात्मक दृष्टि से ओझल रह गया हो। अतः विवेकानन्द को समझने की कुंजी भगिनी के लेखन में सन्निहित है।

संदर्भ

1. जयश्री मुकर्जी – The Ramkrishna Vivekananda movemenet P-223 Firma KLM Private Lted., Calcutta, 1997.
2. 'स्वामी विवेकानन्द राजस्थान में' (दो खण्ड) पंडित झाबर मल शम्र कृत, प्रकाशक– भीलवाड़ा संस्कृति प्रकाशन, भीलवाडा भवन, न्यू फ्रैड्स कॉलोनी, नयी दिल्ली, 1989.
3. इस ग्रंथ का लेखन कार्य अप्रैल 1906 में प्रारंभ होकर फरवरी 1910 मे पूरा हुआ। भगिनी इसकी पांडुलिपि लेकर बेलूड़ मठ गयी और उसे पहले स्वामीजी के मन्दिर में गुरूदेव के श्री चरणों में अर्पित किया। इसका प्रथम संस्करण उद्बोधन ऑफिस, कलकत्ता से प्रकाशित हुआ।
4. Gaiety Theatre बम्बई में शुक्रवार 26 सितम्बर 1902 को दिया गया भगिनी का स्वामीजी विषयक व्याख्यान, Complete Works of Sister Nivedita- खण्ड–1, पृ. 381–81.
5. श्रीमती नेल हेमण्ड को 13–10–1898 को लिखे पत्र से परिव्राजिका आत्मापर्णाकृत 'Sister Nivedita of Ram-Krishana Vivekananda' पृ. 62 पर उद्धृत।
6. भगिनी निवेदिता– 'The Master as I saw Him' पृ. 138.
7. भगिनी निवेदिता – The Mster As I Saw Him' पृ. 157
8. उपर्युक्त।
9. उपर्युक्त पृ. 64.
10. Complete Works पूर्वोक्त पृ. 370.
11. उपर्युक्त।
12. The Mster As I Saw Him' पृ. 15.
13. उपर्युक्त पृ. 16.
14. उपर्युक्त पृ. 25.
15. डॉ. विश्वनाथ प्रसाद वर्मा – पूर्वोक्त पृ. 576.
16. रामधारी सिंह दिनकर पूर्वोक्त पृ. 593.
17. Complete Works पूर्वोक्त पृ. 371.
18. उपर्युक्त पृ. 389.
19. The Mster As I Saw Him' पृ. 167.
20. उपर्युक्त पृ. 160.
21. Complete Works पूर्वोक्त पृ. 376.
22. उपर्युक्त पृ. 375.
23. उपर्युक्त पृ. 375.
24. भगिनी निवेदिता – 'हमारे गुरूदेव और उनका सन्देश' विवेकानन्द साहित्य, प्रथम खण्ड की भूमिका।
25. उपर्युक्त।
26. उपर्युक्त।